पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका : विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित अर्धवार्षिक हिंदी ई-पत्रिका
वर्ष :1, संख्या :1; जुलाई-दिसंबर, 2020

मुक्ति

डॉ. चुकी भूटिया

आज सूचना आई बुआ नहीं रही, सुनकर मन को एक तरह की शान्ति मिली, जीवन की तमाम परेशानियों से उन्हें मुक्ति जो मिल गयी थी।

करीब दो साल से वे खुद से लड़ रही थीं, जिनकी चेतना अपनी बीमारी से ठीक होने की न हो उन पर दवाइयां क्या असर करतीं? कोई दो साल पहले पता चला था कि वे जार[1] पीने लगी थीं, अक्सर धुत्त रहतीं। सुनने में पहले ही उन्हें दिक्कत होती थी, नशे में अब उनकी स्थिति और हास्यास्पद हो जाती है-ऐसी बात भी सुनने को मिलती रही थी। दिल से बहुत नेक थीं, नशे की आदत ने उनको सबसे दूर कर दिया था। मैंने कई बार बुआ को समझाना चाहा था, पर बुआ नशे से बाहर होतीं नहीं, मेरा कहाँ सुनतीं ?

मुझे बुआ से बहुत गहरा लगाव रहा। मेरी माँ के बाद वे वही हैं माँ जैसी। जो मेरी पसंद-नापसंद जानती हैं। मैं जब भी हॉस्टल से लौटती बुआ के यहाँ रहा करती थी। माँ के चले जाने के बाद मेरे नखरे सहने वाली वे ही थीं। चार वर्ष पहले उनके बेटे की मौत हुई थीं। तब से लगातार बदलती चली गयी थी। बेटे ने आत्महत्या की थी। माता-पिता के लिए ऐसी पीड़ा बहुत दुखदायी होती है। उनका बेटा जीवन के संघर्ष से लड़ नहीं पाया था। अपने पीछे परिवार के कइयों को सकते की सी अवस्था में छोड़ गया था। इस हालत से निकलने के लिए पूरे परिवार ने बुआ का साथ दिया था, उस घटना ने सब पर अपना प्रभाव जमाया था। साल दो साल में बुआ भी सामान्य हो चली थी, हाँ उन्होंने पीना तो इसी समय शुरू किया था। बुआ के अब भी दो बच्चे थे और दोनों उन्हें बहुत प्रिय थे। बेटे की मौत के बाद बुआ ने बाहर की दुनिया से अपने को काट लिया था, कहीं आने-जाने से बचने लगी थीं। बेटे की मौत को दो साल होते-होते मेरी शादी के प्रस्ताव आने लगे थे जिससे उनको परेशानी होने लगी थी, वे कहतीं- मेरे बेटे को गए दो साल भी नहीं हुए, घर में खुशियाँ मनाई जाएँगी!! शादी तो मेरी नहीं रुकी पर बहुत कम तामझाम के साथ मैं एक नए आँगन में अपनी नयी जिम्मेदारियों के साथ आ गयी थी।

बुआ बीमार हैं; सुनती थी पर काम के बोझ से कभी मुक्ति नहीं मिली कि उनके पास जा सकूँ ? एक दिन जैसे ही मौका मिला, उनके यहाँ दौड़ पड़ी। मैंने कई बार चाहा कि बुआ के मन की थाह लूँ, पर सफल नहीं हुई। मैं बुआ के यहाँ से निकल आई पर

उनका चेहरा लगातार आँखों के सामने आता रहा। उनके चेहरे से रौनक जा चुकी थी। अपने दायित्व निभाती हुई बेजान बुआ, यहाँ-वहाँ मंडरा रही थीं, अपने कार्यों को निपटा रही थीं। मुझे देख उनके चेहरे में खुशियों के कई रंग झिलमिलाया करते, इस बार गायब थे। इस बार मुझे देख उनके होंठों पर हलकी मुस्कराहट आई और गायब हो गयी। उनके चेहरे पर मातम वाले भाव लौट आए थे। बुआ का उदास मुरझाया चेहरा मैं भूल नहीं पा रही थी।

बुआ के पास लौटने को मैं विवश हुई, मुझे अकेली पाकर उनका बंधा बाँध टूट गया था। जैसे वे मेरे इंतज़ार में थीं। मेरे पूछने भर की देरी थी, भरभरा कर ऐसे टूटी कि मैं असमंजस की स्थिति में आ गयी। बेटे की आकस्मिक मौत पर भी इतनी निराश और अपने जीवन से इतनी खफा नहीं लगी थीं जितनी अब मुझे वे लग रही थीं। बुआ अपने वैवाहिक जीवन से तंग थीं, वे अपने को असफल पा रही थीं, हर स्थिति के लिए खुद को दोष दे रही थीं। 'अब हमारे बीच कुछ नहीं बचा है। तुम्हारे फूफा पैसे नहीं देते हैं , जब-तब लात-घूंसे चलाने लगते हैं। एक बार मेरे कान पर इतने जोर से मारा कि सुनाई देना बंद हो गया है। वैद्यजी के पास गई थी एक दिन, बोले, इसका कोई इलाज नहीं है। किसी और के घर जाते हैं।' बहुत कुछ था बुआ के मन में, मैंने बिना टोके उनको बोलने दिया। मुझे याद आया एक बार बुआ के हाथ-पैर टूट गए थे, वे अस्पताल में भर्ती हुई थीं .. सब फूफा की करतूत थीं। कई सालों से बुआ चुपचाप सहती आई थीं, क्योंकि मेरी दादी कहती हैं- 'घर की समस्याओं को लेकर कभी बाहर नहीं आना, औरत अपने मर्द को बदनाम नहीं करती, किस घर में झगडा नहीं होता,बस समय सब ठीक कर देता है। शायद अपनी माँ के ये शब्द उन्हें आगे बढ़ने से रोकते रहे और उस संबंध को निभाती रहीं, जिसने अपनी सारी हदें पार कर दी थीं।

बुआ के बच्चे बाहर पढ़ते हैं। उन्हें कभी माँ की तकलीफ का अहसास नहीं हुआ। बुआ बोले जा रही थीं- 'त्योहार आते और चले जाते हैं, तन में नए कपड़े के नाम पर पेटीकोट तक नहीं आता। मैंने तंत्र–मन्त्र, पूजा-जाप सब करके देख लिया, अब उनका मन मेरी तरफ कभी नहीं लौटने वाला। कभी अपने हक की बात करूँ तो बहुत चिढ़ जाते हैं। कहते हैं – 'तुम तो ऐसी न थी, तुम्हें यह पाठ कौन पढ़ा रहा है ?' मेरे कान बुआ को सुन रहे थे, पर ध्यान कहीं और था। बुआ का घर पहले मुर्गे-मुर्गियों से भरा रहता था, पर अब वे एक-दो ही दिखाई दे रहे थे। दड़बा खाली पड़ा था। उनके आंगन में खड़ी गाय के गले पर एक बड़ा-सा घाव हो गया था, जिससे मवाद बह रहा था। बुआ ने उसके गले से रस्सी खोल दी थी और कहीं भी जाने के लिए आजाद कर दिया था, पर गाय कहीं नहीं जाती थी, उसी खूंटे पर उदास खड़ी रहती थी।

बुआ के घाव बनकर मुझमें बहने लगे थे। वे कहकर रो रही थीं और मैं उन्हें सुनकर-'मेरे लिए जार लाते हैं ..मैं होश में न रहूँ इसका ख्याल अवश्य

रखते हैं। घर की जिम्मेदारी से बिलकुल अलग हो चुके हैं।' मैं अपनी माँ समान बुआ का दर्द नहीं सुन पा रही थी, उनका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा- 'मैं हूँ आपके साथ आप दोनों अलग हो जाइये। छोड़ दीजिये उन्हें। ' बुआ पर मेरी बात का कोई असर नहीं हुआ, वे अपनी बात कहे जा रही थीं । अलग होने के मुद्दे पर कान ही नहीं दे रही थीं। बहुत समझाने पर भी जब बुआ नहीं मानीं, मुझे गुस्सा आ गया। मैंने झिड़ककर कहा,"जब आपको दुःख में दुखी रहना अच्छा लगता है तो मुझे अपना दुखड़ा सुनाकर दुखी क्यों कर रही हो ?" यह कहते हुए मैं झटके से खड़ी हुई और निकल आई।

मुझे पूरा अंदेशा था कुछ महीनों में वे पूरी तरह पागल हो जाएँगी क्योंकि जैसी बहकी-बहकी बातें कर रही थीं, उसमें से कई मेरी समझ के बाहर थीं। कोई अपने जीवन को दाँव पर रखकर इतना टूटकर किसी को कैसे प्यार कर सकता है ? मैं रास्ते-भर यही सोच रही थी, जीवन के आधे से ज्यादा समय उनका निकल चुका है, बस कुछ और दिन सही से बीत जाते तो कितना अच्छा होता? अब बुआ को आंसुओं के सिवा कुछ मिलने से रहा, पर फूफा से अलग होने की बात पर कतई तैयार नहीं हो रही थीं। कई स्त्रियों के लिए पति का घर सुरक्षा कवच होता है। वे उस कवच के बाहर अपने को निकालने से घबराती हैं, शायद परिवार और समाज की मर्यादा उनके लिए बेड़ी बन जाती है। सोच का सिलसिला चलता रहा और जीवन के कुछ पहलू आँखों के सामने उघड़ते चले गए।

बच्चे होने के बाद मेरे जीवन में भी कुछ ऐसा ही हुआ था। हमारे मध्य चुप्पियाँ घर कर गयी थीं। कई राजों से मैंने पर्दा उठाना चाहा, वे चुप रहे ..वे चुप्पियाँ आज भी मुझे कुरेदती हैं और मन इस रिश्ते के प्रति खट्टास से भर जाता है पर मेरे बच्चे,उनका भविष्य और घर-परिवार का मान-सम्मान,समाज सब मेरे सामने इस तरह डोलते हैं कि मैं उस दुनिया को संवारने की एक चेष्टा और कर बैठती हूँ। रोज़ रात थका-हारा पति जब लौटते हैं एक बार यह ख्याल अवश्य आता है कि न जाने किसकी बाहों में सुकून खोजकर आये होंगे? पर अपने कर्तव्य से मैं कभी नहीं भागी,उसी तरह उनकी सेवा करती रही जैसे हमारे बीच कुछ हुआ ही न हो। मेरे अनुत्तरित प्रश्न मेरे सीने में दफन हैं ,दुनिया का दबाव कितना भी क्यों न हो पर अपने मानस से उन प्रश्नों के उत्तर खोजने को मन छटपटाता रहता है। मेरे पास मेरी नौकरी है,मैं दूसरी बुआ नहीं बनी। इसी ने मुझे ताकत दी है और बंद दीवारों की घुटन में कैद होने से मुझे बचाती रही है।

अच्छा हुआ; बुआ की मौत हो गयी, उन्हें शांत कर गयी, हमेशा के लिए। जीना कितना मुश्किल होता है जब कोई अपना दगाबाज़ निकल आता है। मैं सब जानती हूँ ..। नमकीन पानी ने मेरे होंठों पर अपने होने का अहसास कराया, तब होश आया मेरा साथी फिर मेरे संग बह चला है..वही

साथी जो अकेलेपन में मेरे साथ रहता है। कमज़ोर होने का ठप्पा नहीं लगाना चाहती, इसलिए दुनिया के सामने उसे आने की इजाजत मैंने कभी नहीं दी है। माँ ..कहाँ हो ?

जाना नहीं है ? अचानक मुझे आवाज़ देता हुआ बेटा कमरे में चला आया। मैं वर्तमान में आई; अपने साथी को परे धकेल दिया और जाने को उठ बैठी। ग्यारह बज रहे थे, बुआ की मौत की खबर सुनकर मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गयी थी; समय का अंदाजा ही नहीं हुआ।

कमरे से निकलते ख्याल आया, मुझे एक दिया जला लेना चाहिए। मंदिर-गृह गयी, मैंने बुआ के नाम तीन दिए जलाये, आखें बंद, हाथ जोड़कर प्रार्थना की, बंद आँखों से हँसती-मुस्कुराती स्वस्थ बुआ का चेहरा दीखा, वही मेरी माँ समान वाली बुआ, जिनकी आँखों में मेरे लिए बेइंतहा मुहब्बत थी, मेरी आँखें फिर बह चलीं, पर ये सुकून के आंसू थे; उनके मुक्त होने की ख़ुशी के !

1. *चावल से बनी स्थानीय शराब*

संपर्क-सूत्र:
सहायक प्रोफ़ेसर
हिंदी विभाग,सिक्किम विश्वविद्यालय